## मुक्त होने की विधि

जिनेन्द्र भगवान ने दिव्यध्वनि में यह उपदेश दिया है कि निज शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान व ध्यान अर्थात् निश्चयरत्नत्रयरूप मसाले के प्रयोग से वीतरागता की आग भभक उठती है; जो कर्मरूपी ईंधन को जलाकर भस्म कर डालती है। आत्मध्यान बिना कर्मो से मुक्ति किसी भी प्रकार से नहीं हो सकती; इसलिए आत्मानुभव ही वास्तविक मोक्षमार्ग है। समकिती बाह्यचारित्र को मोक्षमार्ग मानता ही नहीं है ।

अरे रे ! इस जीव ने अपने गीत भी कभी प्रीति से सुने नहीं। जो प्रीतिपूर्वक निज की बात सुनता है, वह अवश्य मुक्ति का भाजन बनता है। अनंतगुणमय आत्मा में अनादि-अनंत एक प्रकाश नाम का गुण है, जिससे आत्मा प्रत्यक्ष होता है, परोक्ष नहीं रहता।आत्मा की सैंतालीस शक्तियों में **प्रकाश** नाम की बारहवीं शक्ति है, जिससे प्रत्यक्ष ही स्वयं अपने को जानता है।

निज को जानकर निज में रहना – यही आत्मा का घर है। अपना ज्ञान ही अपना वस्त्र है। निज आत्मिक रस ही निज का भोजन है तथा आत्मिक शय्या ही ज्ञानी की शय्या है। इसप्रकार आत्मा को प्रत्यक्ष जानकर जो वेदन करता है, वह संसार से मुक्त होता है।

इसलिये स्वयं से स्वयं का प्रत्यक्ष स्वसंवेदन ही मुक्त होने की विधि है, इसके सिवाय अन्य दूसरी विधि नहीं है।

**ह्न योगसार प्रवचन, पृष्ठ : 91-92**





# वीतराग-विज्ञान

**वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।**
**वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।**

वर्ष : 21 252 अंक : 12

## प्रवचनसार पद्यानुवाद

### ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

यह मूर्ततनगत जीव मूर्तपदार्थ जाने मूर्त से।
अवग्रहादिकपूर्वक अर कभी जाने भी नहीं।।५५।।
पौद्गलिक स्पर्श रस गंध वर्ण अर शब्दादि को।
भी इन्द्रियाँ इक साथ देखो ग्रहण कर सकती नहीं।।५६।।
इन्द्रियाँ परद्रव्य उनको आत्मस्वभाव नहीं कहा।
अर जो उन्हीं से ज्ञात वह प्रत्यक्ष कैसे हो सके ?।।५७।।
जो दूसरों से ज्ञात हो बस वह परोक्ष कहा गया।
केवल स्वयं से ज्ञात जो वह ज्ञान ही प्रत्यक्ष है।।५८।।
स्वयं से सर्वांग से सर्वार्थग्राही मलरहित।
अवग्रहादि विरहित ज्ञान ही सुख कहा जिनवरदेव ने।।५९।।
अरे केवलज्ञान सुख परिणाममय जिनवर कहा।
क्षय हो गये हैं घातिया रे खेद भी उसके नहीं।।६०।।
अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है।
हैं नष्ट सर्व अनिष्ट एवं इष्ट सब उपलब्ध हैं।।६१।।
घातियों से रहित सुख ही परमसुख यह श्रवण कर।
भी न करें श्रद्धा अभवि भवि भाव से श्रद्धा करें।।६२।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

## ज्ञानी को परिषहों का वेदन नहीं

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 24 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

**परीषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी।**
**जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ।।24।।**

अध्यात्मयोग से अर्थात् आत्मा का आत्मा के साथ जुड़ान होने से ज्ञानी जीव को परीषहादिक का वेदन (अनुभव) नहीं होता है; जिससे कर्मों के आस्त्रव को रोकनेवाली निर्जरा उस जीव को होती है।

**( गतांक से आगे .....)**

अब शिष्य प्रश्न करता है कि जो ज्ञानी जीव अध्यात्मलीन होता है अर्थात् जो अपनी आत्मा में लीन हो गया है, जम गया है – ऐसे योगी को स्वात्मध्यान का क्या फल मिलता है ? यह बात आचार्यदेव इस गाथा में कहते हैं।

धर्मीजीव अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा के ध्यान में जितना लीन हुआ है, उतना उसका परीषहों की ओर लक्ष नहीं है; उसे परीषहों का वेदन नहीं है। प्रतिकूलता की ओर जब लक्ष ही नहीं रहेगा तो उसका अनुभव भी नहीं होगा।

धर्म रोकड़िया है और शुभाशुभभावों का फल भी रोकड़िया है। जिससमय शुभाशुभभाव होते हैं; उससमय आकुलता व प्रतिकूलता होती है तथा जिससमय धर्मभाव होते है, आत्मा के स्वरूप का ध्यान होता है; उससमय शांति का वेदन होता है।

भगवान आत्मा जब अन्तरस्वरूप के ध्यान में लीन होता है, तब उसे शरीरादिक के क्षुधा–तृषादिरूप जो दुःख है, उसका लक्ष नहीं रहता, तब उसे उसका वेदन भी नहीं होता। सर्प डसे, बिच्छू काट खाये तो भी उसे उसका लक्ष नहीं रहता। ज्ञान जब स्वज्ञेय में जम जाता है, तब धर्मी को परज्ञेयों का स्मरण नहीं होता

है; जहाँ लीनता होती है, वहीं उसका ज्ञान होता है।

यह भगवान आत्मा अनंत ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, सत्तादिगुणवाला तत्त्व है, उसका स्मरण करते ही अन्य सब बातें विस्मरण हो जाती है। तेरे बाह्य शरीरादिक में परीषहादिक है ही कहाँ ? प्रतिकूलता-उपसर्ग आदि है ही कहाँ ? क्षुधा-तृषादिक भी नहीं है; अत: इन सभी का ख्याल धर्मीजीव को नहीं होता है।

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि ज्ञानी जीव को प्रतिकूलता, परीषह, उपसर्ग आदि का कष्ट है ही नहीं; लेकिन लोगों को लगता है कि जो जीव बहुत परीषह, उपसर्ग आदि कष्ट सहन करते हैं, उन्हें धर्म होता है; परन्तु ऐसा कदापि नहीं है।

ज्ञानी का ज्ञान जब स्वरूप में एकाकार होता है, तब बाह्य में परीषहादिक होते है; लेकिन ज्ञानी को उसका लक्ष नहीं रहता; इसलिये ज्ञानी को बहुत परीषहादिक का सेवन करना पड़ता है – ऐसा नहीं है। जब मुनिराज ध्यान में एकाकार होते है, तब बाह्य शरीरादिक को सिंहादिक भक्षण करते हों, लेकिन मुनिराज का उस ओर लक्ष ही नहीं रहता, वे तो अपने आत्मा के आनन्द में मस्त रहते हैं।

जो ध्यान, ध्याता और ध्येय को एकाकार कर लेता है; उसे परीषहादिक का ध्यान भी नहीं है और ज्ञान भी नहीं है – यह देखकर लोगों को लगता है कि अहो ! यह मुनिराज तो इतना कष्ट सहन करते है; किन्तु आचार्य देव कहते हैं कि लोगों को इसकी खबर ही कहाँ है, वे भावलिंगी संत कष्ट सहन नहीं करते; बल्कि अपनी आत्मा के ध्यान में लीन होकर उसका रसास्वादन करते हैं।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि जिससमय स्वरूप की ओर उपयोग लगता है; उससमय शरीर में रोग है कि नहीं ? सिंह, बाघ या सियार शरीर को खा रहे हैं कि नहीं ? अग्नि में शरीर जल रहा है कि नहीं ? लेकिन इन सबका ज्ञानी को स्मरण है ही नहीं, उसे तो विकल्प भी नहीं है।

भगवान आत्मा को ज्ञेय बनाकर, ध्येय बनाकर जो उसके ध्यान में लीन होता है, उसे परीषहादिक की स्मृति भी नहीं होती है। यह आत्मा के ध्यान का स्वरूप है। आत्मध्यान में लीन पुरुष को परीषहादिककी ओर का विकल्प भी नहीं है और स्मरण भी नहीं है; एकमात्र आनन्द का ही वेदन है।





इसप्रकार ज्ञानी जीव जब शुद्धस्वरूप में लीन होता है, तब कर्मों का आगमन भी रुक जाता है और जूने कर्म भी छूटते जाते हैं, उनकी भी निर्जरा हो जाती है; पर यह तो व्यवहार का कथन है। वास्तविकता में ज्ञानी का परद्रव्यों के साथ संबंध ही कहाँ था जो छूटेगा ? बहुत मर्म की बात है।

जब यह जीव संसार के किसी कार्य के गहन विचार में पड़ा हो, तब यदि उसके पास से सर्प भी निकल जाये तो उसका उसे ध्यान नहीं रहता। एक सज्जन कहा करते थे कि – 'मैं तकिये पर बहिखाता लेकर हिसाब लिखा करता था। एक दिन तकिये के नीचे पोली जगह से साँप निकला, लेकिन मुझे पता ही नहीं चला। तभी किसी ने जोर से चिल्लाकर मुझे आवाज लगायी और मेरा ध्यान उस ओर गया।' इसप्रकार जब संसार के कार्यों को करते हुये भी अन्य बातों का ध्यान नहीं रहता, तब आत्मा के ध्यान के समय बाहर का ध्यान कहाँ से होगा ?

मुनिराज को आत्मध्यान के समय परीषहादिक का ध्यान रहे तो वह आत्मध्यान कैसे कहलायेगा ? वह तो विकल्प है, आकुलता है, आत्मा का ध्यान नहीं है। जो आत्मा अन्तर के ज्ञान-ध्यान-आनन्द में मस्त हो, उसको परीषहों का स्मरण नहीं हो सकता। उपसर्ग आदि का उसे ख्याल नहीं रहता तथा उस समय कर्मों का संबंध उसके छूटता जाता है – ऐसा जो कहा वह भी व्यवहार का ही कथन है। वास्तव में ज्ञानी ने पूर्व के कर्मों का वर्तमान उदय के साथ संबंध जोड़ा ही नहीं है, तो छूटे कहाँ से ? ज्ञानी ने आत्मा के साथ ही संबंध जोड़ा है – ऐसी निश्चय की बात लोगों को कठिन लगती है; परन्तु यही बात सच्ची है। लोगों ने आत्मा को इतना निर्बल मान लिया है कि आत्मा का वीर्य पुण्य-पाप से हटकर आत्मा का धर्म प्रगट कर सकता है – यह बात उनके दिमाग में बैठती ही नहीं है।

आत्मा स्वयं पूर्णानन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्रता करने से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्रकट करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन तीन लोक में नहीं है।

**प्रश्न :** शास्त्र में आता है कि नरक की भयंकर वेदना से अथवा देवदर्शन आदि से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है ?

**उत्तर :** अरे ! यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ तो यह बताया है कि जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसे बाहर में कौनसे निमित्त मिलते हैं ? किन्तु यदि वेदना में या भगवान के दर्शनादि से सम्यग्दर्शन होता हो तो वेदना तो समस्त नारकियों को होती है तथा भगवान के दर्शनादि भी सभी करते हैं, सभी को सम्यग्दर्शन होना चाहिये। भगवान के दर्शन से तो पुण्य बंध होता है। भगवान तो परद्रव्य हैं, वे इस जीवद्रव्य की पर्याय में क्या करेंगे ? स्वयं, स्वयं के ही भगवान का दर्शन करे तो स्वयं की पर्याय में भगवानपना प्रगट होता है।

भाई ! तुझे तेरे आत्मा का हित करना है या किसी अन्य का ? दूसरे का लक्ष करने से तेरी आत्मा का हित नहीं होगा; बल्कि शुभाशुभभावों का बन्धन ही होगा। परद्रव्य के आश्रय से संवर-निर्जरा तीनकाल में भी नहीं हो सकती।

आत्मा का यथार्थ ध्यान करनेवाले जीव दो प्रकार के होते हैं ह्न एक तो सिद्धयोगी, दूसरे साध्ययोगी । जो ध्यान में लीन होकर शुभाशुभारूप कर्मों की निर्जरा करके तत्काल ही अयोगीपद को धारण करते है, वे सिद्धपद को प्राप्त सिद्धयोगी कहलाते हैं।

दूसरे जिन्हें पाप की निर्जरा तो होती है; लेकिन साथ में पुण्य का बंध भी होता है, उन्हें साध्ययोगी कहते है। जैसे – पाँच पाण्डव। इनमें से तीन सिद्धयोगी है और दो साध्ययोगी है। युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन ध्यान में मस्त थे, अत: कुछ ही क्षणों में उन्होंने मोक्षपद प्राप्त कर लिया; जबकि नकुल व सहदेव मुनिराजों को जरासा विकल्प उत्पन्न हुआ कि बड़े मुनिराजों का क्या हुआ होगा ? विकल्प उत्पन्न हुआ और तत्काल ही सर्वार्थसिद्धि का पुण्य बंध गया। यही जीवों के परिणामों की विचित्रता है।

चिदानन्द भगवान आत्मा पूर्णत: शुद्ध है – ऐसी दृष्टि किये बिना और उसकी शरण में गये बिना आत्मा को शान्तिलाभ तीन लोक और तीन काल में नहीं हो सकता – यही उत्कृष्ट बात है। बड़े-बड़े मुनिराजों को भी चित्त में विकल्प उत्पन्न होवे तो भव धारण करना पड़ता है। **(क्रमश:)**







## मोक्ष और मोक्ष का उपाय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की पाँचवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

**अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ।**
**ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो ।।5।।**

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है; जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं – ऐसा सकल गुणमय पुरुष आप्त है।

**(गतांक से आगे ....)**

मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ, परमाणु से भिन्न परमात्मा हूँ – ऐसे स्वभाव की रागरहित श्रद्धा निश्चयसम्यक्त्व है, यही धर्म है और ऐसी निश्चयश्रद्धा के साथ शुभराग के समय व्यवहारश्रद्धा होती है। फिर भी निश्चय के कारण व्यवहार नहीं है और उस व्यवहार के कारण निश्चय नहीं है। निश्चय रह जाता है और व्यवहार का विकल्प टूट जाता है।

सिद्ध परमात्मा के समान ही मेरा आत्मा है, ऐसे आत्मा की सविकल्प श्रद्धा व्यवहारश्रद्धा है। प्रथम व्यवहार और पश्चात् निश्चय – ऐसे पहले-पीछे नहीं है। कदाचित् पहले व्यवहारश्रद्धा करने को कहा हो; किन्तु वास्तव में अखण्ड स्वभाव की प्रतीति करके निश्चयश्रद्धा करे तो ही राग को व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। निश्चयश्रद्धा करे तो पूर्व की रागवाली श्रद्धा पर व्यवहार का उपचार आता है।

कभी-कभी ऐसा भी कहा जाता है कि प्रथम व्यवहार होता है; किन्तु इसका आशय ऐसा नहीं है कि वह व्यवहार, निश्चय का कारण है। इसी नियमसार के पृष्ठ- 109 में कहेंगे कि 'जो परमजिन योगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है'; निर्विकल्प वीतरागदशा न हो, वहाँ तक पहले ऐसा शुभराग होता है – ऐसा

यहाँ ज्ञान कराया है। मुनि के छठे गुणस्थान में कैसी दशा होती है – यह बताया है। प्रथम व्यवहार कहा, उसका अर्थ यह नहीं है कि पहले व्यवहार प्रकट हो और बाद में निश्चय प्रकट हो। सातवें गुणस्थान में निर्विकल्पदशा में स्थिर न रह सके, तब छठे गुणस्थान की विकल्पदशा में शुभभाव होते हैं – ऐसा वहाँ बताया है। किन्तु व्यवहार करते–करते निश्चय प्रकट होगा, राग करते–करते वीतरागता होगी; ऐसा कथन करने का अभिप्राय नहीं है।

पर को जानना कोई दोष नहीं है, किन्तु पर की तरफ झुकाव करके राग की वृत्ति होना दोष है। ज्ञान होना कोई दोष नहीं है, ज्ञान का स्वभाव तो सम्पूर्ण जानने का है। मेरी पर्याय में संवर–निर्जरा होते हैं, वे तो अंश हैं, मात्र उतना ही मैं नहीं हूँ तथा संवर–निर्जरा के भेद की तरफ लक्ष जाता है, वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अन्तर में अखण्ड परमात्मतत्त्व हूँ – ऐसी जो विकल्प की वृत्ति उठती है, उसे यहाँ व्यवहार श्रद्धा कहा है। विकल्पवाली श्रद्धा में भी मैं शुद्धजीव हूँ, पुण्य–पाप रहित हूँ – ऐसी रागसहित श्रद्धा है। यदि व्यवहारश्रद्धा में रागरहित शुद्धजीव का समावेश न करें तो सात तत्त्व भिन्न सिद्ध नहीं होते और यदि उसमें विकल्प टूट जाये तो वह श्रद्धा व्यवहारश्रद्धा ही न रहे, अपितु निश्चय श्रद्धा हो जाये। निष्कर्ष यह निकला कि विकल्पसहित जो शुद्ध जीवतत्त्व का निर्णय किया, वह व्यवहारसम्यक्त्व है और यदि ऐसी श्रद्धा करे कि व्यवहार से – राग से लाभ होगा तो उसके तो व्यवहार और निश्चय में भेद ही नहीं रहा।

संक्षेप में कहो तो दो तत्त्व हैं। अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व। यदि विस्तार से कहो तो सात तत्त्व हैं; जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। उसमें जो अन्तस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व कहा, वह तो शुद्धजीवतत्त्व है और शेष छहों तत्त्व बहिस्तत्त्व हैं। इन सब की रागवाली श्रद्धा ही व्यवहारश्रद्धा है।

(1) मैं जीवतत्त्व हूँ। यह जीवतत्त्व अजीवतत्त्व से तथा पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध तत्त्व से रहित है और संवर, निर्जरा एवं मोक्ष के अंश जितना भी नहीं है; क्योंकि ये तो एकसमय के अंश हैं और जीवतत्त्व तो त्रिकाल है। ऐसे त्रिकाली जीवतत्त्व का विकल्प से निर्णय करना व्यवहारसम्यक्त्व है।

(2) शरीर अजीव है, उसकी गति जीव से नहीं होती। मेरे कारण से शरीर की





गति होती है – ऐसा जो मानता है, उसे जीव–अजीव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है। शरीरादि तो अजीव की पर्यायें हैं और मैं जीव हूँ, अजीव से जीव भिन्न है; इसके बदले ऐसा माने कि जीव से अजीव की क्रिया होती है अथवा अजीव की क्रिया से जीव को धर्म होता है तो उसे जीव–अजीव की व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है। व्यवहारश्रद्धा में सातों तत्त्व जैसे हैं, वैसे ही पहचानना चाहिये। उसमें विकल्प है, इसलिये उसे व्यवहार कहा है।

'सात तत्त्व' कहते ही जीव और आस्रव भिन्न–भिन्न हैं – ऐसा आ जाता है। सात तत्त्व के ज्ञान को विकल्पसहित कहना व्यवहारश्रद्धा है और राग टूटकर निर्विकल्प श्रद्धापूर्वक जो स्वभाव के आश्रय वाला ज्ञान है, राग रहित ज्ञान है; वह निश्चय है। रोटी अजीव है, किन्तु मैंने रोटी बनाई – ऐसा माननेवाले को तो अजीवतत्त्व की भी श्रद्धा नहीं और जीव तत्त्व की भी श्रद्धा नहीं है। रागवाली व्यवहारश्रद्धा का निषेध करके अन्तरस्वभाव की श्रद्धा में जाये तो उस रागवाली श्रद्धा को व्यवहाररूप आंगन कहा जाये। वास्तव में अन्तरस्वभाव की रागरहित प्रतीति ही धर्म की प्रथम इकाई है। सर्वत्र सर्वव्यापक एक जीव ही है और अजीवादि कहीं है ही नहीं, ऐसा माननेवाले ने तो व्यवहार से भी साततत्त्वों को नहीं माना अर्थात् उसको व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है।

**(3) आस्रव :** पुण्य–पाप दोनों का समावेश आस्रव में हो जाता है। आस्रव जीव नहीं है, संवर–निर्जरा भी नहीं है। इसप्रकार तत्त्वों को भिन्न–भिन्न माने तो व्यवहारश्रद्धा है, किन्तु पुण्य करते–करते धर्म होगा– ऐसा माने तो उसके व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है, उसने तो सातों तत्त्वों को नहीं माना।

**(4) संवर :** निश्चय से संवर तो स्वभाव के आश्रय से है। रागरहित, पुण्यरहित निर्मलपर्याय संवर है, उसको पहचानना ही व्यवहारश्रद्धा है। संवर प्रकट कब हो ? स्वभाव का आश्रय करे तब; परन्तु ऐसा संवर प्रकट होने से पहले उसकी रागसहित प्रतीति करना व्यवहारश्रद्धा है।

**(5) निर्जरा :** ये आत्मा की निर्मल पर्याय है। यह निर्जरा अजीव के कारण नहीं होती, पुण्य के कारण भी नहीं होती। रोटी नहीं खाई; इसलिये निर्जरा हुई –

ऐसा माने अथवा शुभराग हुआ, उससे निर्जरा हुई – ऐसा माने तो उसे निश्चय या व्यवहार एक की भी श्रद्धा सच्ची नहीं है। निर्जरा माने विशेषरूप से अशुद्धता का झड़ जाना अथवा शुद्धता की वृद्धि होना। यह एक समयवर्ती भाव है, इसमें शुद्धता की वृद्धि उत्पाद है और अशुद्धता का झड़ना व्यय है।

**(6) बन्धतत्त्व :** बन्ध का कारण त्रिकाल शुद्ध जीवतत्त्व नहीं है और न अजीव ही बन्ध का कारण है। बन्ध तो एकसमय का विकारी भाव है। स्वभाव का विकास न होनेपर अशुद्धता में अटक जाना ही बन्ध है।

**(7) मोक्षतत्त्व :** आत्मा की पूर्ण शुद्धता प्रकट हो जाना ही मोक्षतत्त्व है। मोक्षप्राप्त परमात्मा को पुन: अवतार नहीं होता। साधकदशा में भी शुद्धस्वभाव की दृष्टि होने से दृष्टि में अशुद्धता का स्वीकार नहीं होता। वह भी शुद्धता में स्थिर होकर पुन: अस्थिरता में नहीं आता; तो फिर पूर्ण परमात्मदशा होने पर पुन: अशुद्धता हो या अवतार धारण करे – ऐसा कैसे हो सकता है ? जिस भाँति मोक्षतत्त्व में अजीव नहीं; आस्रव, बन्ध या संवर-निर्जरा नहीं; उसी भाँति मोक्षतत्त्व में भी सम्पूर्ण जीवतत्त्व नहीं है। मोक्षतत्त्व तो एकसमय की पर्याय है और जीवतत्त्व त्रिकाल है, दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न है।

जीवादि सातों तत्त्वों का स्वरूप भिन्न-भिन्न जाने तभी सात तत्त्व सिद्ध होते हैं तो भी सात तत्त्वों का लक्ष्य करना व्यवहारश्रद्धा है और अभेद-स्वभाव-सन्मुख होकर रागरहित प्रतीति करना परमार्थश्रद्धा है। जो व्यवहारसम्यक्त्व कहा है, वह तो ज्ञान का उसप्रकार का क्षयोपशम तथा राग है; वास्तव में व्यवहारश्रद्धा सच्चा चारित्र नहीं है। सम्यक्त्व तो एक ही प्रकार का है। शुद्ध कारणपरमात्मा की निर्विकल्प श्रद्धा ही सच्चा सम्यक्त्व है, अन्य समस्त तो आरोप है।

सात तत्त्व तो भेद से है अर्थात् सातों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। सात तत्त्वों का ऐसा वर्णन सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है। सर्वज्ञ की वाणी अर्थात् सम्पूर्ण दोषरहित समस्त पदार्थों को कथन करनेवाली वाणी, उसमें कथित अन्तस्तत्त्व तथा बहिस्तत्त्व अथवा जीवादि सात तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान व्यवहारश्रद्धा है। यह भी अभी रागवाली श्रद्धा है, यह धर्म नहीं है। धर्म तो अखण्ड चैतन्य स्वभाव की निर्विकल्प श्रद्धा करना है। **(क्रमश:)**







## शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

**(गतांक से आगे .....)**

**जो पुरुष इस भूमिका का आश्रय लेता है, वही अनन्त चतुष्टयमय आत्मा को प्राप्त करता है – अब इस अर्थ का काव्य कहते है –**

**( वसंततिलका )**

**चित्पिंडचंडिमविलासिविकासहासः**
**शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।**
**आनंदसुस्थितसदास्खलितैकरूप-**
**स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा।।268।।**

**( वसंततिलका )**

**उदितप्रभा से जो सुप्रभात करता।**
**चित्पिण्ड जो है खिला निज रमणता से।।**
**जो अस्खलित है आनन्दमय वह।**
**होता उदित अद्भुत अचल आतम।।268।।**

**पूर्वोक्त प्रकार से जो पुरुष इस भूमिका का आश्रय लेता है उसी के चैतन्यपिण्ड के निरर्गल विलसित विकासरूप जिसका खिलना है। शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात के समान है, आनन्द में सुस्थित ऐसा जिसका सदा अस्खलित एक रूप है और जिसकी ज्योति अचल है – ऐसा यह आत्मा उदय को प्राप्त होता है।**

**जो पुरुष पूर्वोक्तरीति से इस भूमिका का आश्रय करता है, वही अनन्त-**

चतुष्टयमय आत्मा को प्राप्त करता है। इस अर्थ का सूचक यह काव्य है, कलश में सुप्रभात शब्द आया है। उस सुप्रभात का अर्थ है - जिसप्रकार रात्रि के अंधकार का नाश करके भूमण्डल पर सूर्य अपनी किरणों द्वारा प्रकाश फैलाता है; उसीप्रकार पुण्य-पाप की एकताबुद्धिरूप अज्ञान अंधकार की भेदक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रारूप चैतन्य की ज्योति प्रगट होती है, उसे अध्यात्म में मंगलमय सुप्रभात कहते हैं।

जिसतरह सूर्य के उदय से सहस्त्रा पांखुडी का कमल खिल उठता है; उसीप्रकार भगवान आत्मा में एकाग्र होकर स्थित होने पर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि अनन्त गुण-पर्यायें निर्मलरूप में प्रगट हो जाती हैं अर्थात् प्रतिबन्धरहित, निरंकुश, मर्यादारहित पूर्ण ज्ञान-दर्शनादिरूप विकास हो जाता है। अहा ! जिसे कोई रोकनेवाला नहीं है - ऐसा अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप विकास खिल जाता है। साधक की भूमिका में व्यवहार आत्मा है; परन्तु वह पूर्णदशा का कारण नहीं है।

कलश में आये 'शुद्धप्रकाश झर निर्झर' का अर्थ है कि - पूर्ण ज्ञान व आनन्द से भरे भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान व रमणता होने पर पर्याय में केवलज्ञान का दिव्य सातिशय प्रकाश प्रगट हो जाता है। वह केवलज्ञान शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण सुप्रभात के समान है। ऐसा सुप्रभात व्यवहार के आश्रय से प्रगट नहीं होता, शुद्धनिश्चय के आश्रय से ही प्रगट होता है।

यद्यपि केवलज्ञान प्रगट होने की प्रक्रिया में ज्ञानावरणादि कर्मों का अभाव भी होता है; परन्तु कर्मों का अभाव कर्मों की स्वतंत्र योग्यता से अपने स्वकाल में होता है, आत्मा उन्हें नाश करने के लिए कुछ भी नहीं करता। उनका नाश करना आत्मा के अधिकार क्षेत्र में ही नहीं है। अहा ! आत्मा कर्मों से तो जुदा है ही, कर्मों के आधीन हुए विकारी भावों से भी जुदा है। आत्मा में निज शुद्धात्मा के आश्रय से, उसी में पूर्णस्थित होने से केवलज्ञान आदि निर्मलदशायें प्रगट होती हैं।

प्रवचनसार गाथा 16 में कहा है आत्मा स्वयं ही कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरणरूप होकर पर्याय में केवलज्ञानादि रूप से स्वयंभू प्रगट होता है; इसलिए जीव बाह्य सामग्री को शोधने-खोजने के लिए व्यर्थ ही व्यग्र क्यों होता है ? स्वभाव का आश्रय करने पर अन्दर में शक्तिरूप से वह पर्याय में स्वयमेव प्रगट हो जाता है। उसे बाह्य सामग्री की कोई गरज नहीं है।





प्रश्न - भक्तिमें भगवान को दीनदयाल कहा जाता है और आपके कहे अनुसार तो भगवान को दीनदयाल कहना संभव ही नहीं है तो फिर उस कथन का क्या अर्थ समझा जाये ?

उत्तर - अहा ! भगवान की पूर्वपर्याय में जो दीनता अर्थात् पामरता थी, उसे तोड़कर भगवान ने 'स्व' के आश्रय से अपनी प्रभुता प्रगट करके दीन-दयालपना प्रगट कर लिया है। किसी अन्य पर दया करने के कारण वे दीनदयाल नहीं हैं; बल्कि उन्होंने अपनी पूर्व की पामर पर्याय पर दया करके 'दीनानाथ' का पद प्राप्त किया है। इसकारण उन्हें दीनदयाल, दीनानाथ, पतितपावन आदि कहा जाता है। वे स्वयं पतित से पावन बने, इसकारण पतितपावन हैं, न कि वे दूसरे पतितों को पावन करते हैं।

अहाहा .....! अपने चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होना ही शुद्ध चैतन्यस्वरूप की शक्तिको व्यक्त करने का उपाय है। अन्तर एकाग्रता की पूर्णता होने पर केवलज्ञान का शुद्ध प्रकाश प्रगट होता है। कलश टीकाकार श्री राजमलजी ने सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान को सुप्रभात कहा है; क्योंकि उसमें दर्शनमोह का नाश होकर सम्यग्ज्ञान का जाज्वल्यमान सूर्य उगता है।

इसप्रकार सम्यग्ज्ञान व पूर्ण केवलज्ञान सुप्रभात समान है।

अब कहते हैं कि - 'आनन्द सुस्थित सदा अस्खलित एकरूपः' अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ आनन्दघन प्रभु जो अन्दर में स्वयं विद्यमान है, उसको पर्याय में स्वीकार करके उसी में लीन रहने पर अनन्त आनन्द की दशा प्रगट होती है।

अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से छलाछल भरा प्रभु ध्रुव विराजता है। जिसने उसका आश्रय किया, उसको पर्याय में जो अतीन्द्रिय आनन्द होता है, उसके समक्ष इन्द्र के भोग भी तुच्छ भासित होते हैं। यह पूर्ण आनन्द की दशा अस्खलित है।

जो अनन्तवीर्यस्वरूप प्रभु आत्मा में लीन होकर परिणमते हुए अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि सहित निज स्वरूप की रचना करें, उन्हें पर्याय में अनन्तबल प्रगट हो जाता है। जो शक्तिरूप से होता है, उसका आश्रय लेने पर ही अचल ज्योतिरूप से प्रगट हो जाता है।

अहा ! ऐसा दिव्य सुप्रभात ! सूर्य का उदय होता है। जो केवलज्ञानरूप सूर्य एकबार उदित हुआ, फिर कभी अस्त नहीं होता। (क्रमशः)

# ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

**प्रश्न :** दर्शनोपयोग में शुभ और अशुभ ऐसे भेद पड़ते हैं कि नहीं ?

**उत्तर :** नहीं ! शुभ और अशुभ – ऐसे भेद न तो दर्शनोपयोग में हैं और न ज्ञानोपयोग में हैं; यह तो चारित्र के आचरणरूप उपयोग के भेद हैं। चारित्र के आचरण में शुभ, अशुभ और शुद्ध ऐसे तीनप्रकार हैं; उन्हें शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

**प्रश्न :** क्या बिना गुण की कोई पर्याय होती है ?

**उत्तर :** हाँ ! भव्यता वह पर्याय है; परन्तु उसका कोई गुण नहीं होता। गुण न होने पर भी भव्यत्व पर्याय होती है और सिद्धदशा होने पर वह पर्याय नहीं होती।

**प्रश्न :** पर्याय उससमय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है ह्न ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है ?

**उत्तर :** पर्याय के ऊपर से लक्ष छोड़कर ध्रुवद्रव्य की तरफ ढलने का प्रयोजन है। पर्याय उससमय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है ह्न ऐसा बताकर, उसके ऊपर का लक्ष छुड़ाकर ध्रुवद्रव्य की ओर लक्ष कराने का प्रयोजन है। पर्याय निश्चित है, ध्रुव है अर्थात् पर्याय उससमय की सत् होने से आगे-पीछे हो सके ह्न ऐसा नहीं है, इसप्रकार जाने तो दृष्टि द्रव्य के ऊपर जावे और द्रव्य के ऊपर लक्ष जाने से वीतरागता उत्पन्न हो। वीतरागता ही मूल तात्पर्य है। अरे ! ऐसी बात करोड़ों रुपया अर्पण करने पर भी मिलनेवाली नहीं है। अहा ! जिसके जानने पर वीतरागता उत्पन्न हो, भला उसकी कीमत क्या ? वह तो अनमोल है।

**प्रश्न :** पर्याय का बिगाड़ मिटकर पर्याय में सुधार कैसे हो ?

**उत्तर :** पर्याय स्वयं ही पर का लक्ष्य करके बिगड़ी है, यदि वह स्वयं ही पर का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का लक्ष्य करे तो स्वयं से ही स्वयं सुधर जाये। स्व का लक्ष्य करना ही पर्याय का सुधार है।





**प्रश्न :** आत्मा में अनंत धर्म होने पर भी उसे ज्ञानमात्र ही क्यों कहा जाता है ?

**उत्तर :** आत्मा की जो ज्ञप्तिक्रिया होती हे, उसमें अनन्त धर्मों का समुदाय एक साथ ही परिणमन करता है। अकेला ज्ञान ही नहीं परिणमता; परन्तु उस ज्ञान के साथ ही आनन्द, श्रद्धा, जीवत्व आदि अनन्त गुणों का परिणमन भी होता है। एक ज्ञानगुण को भिन्न लक्ष में लेकर धर्मी नहीं परिणमता; किन्तु ज्ञान के साथ अनन्त धर्मों को अभेदपने लक्ष में लेकर धर्मी जीव एक ज्ञप्तिमात्र भावरूप से परिणमन करता है।

**प्रश्न :** संसारदशा दुःखरूप है और मोक्षदशा सुखरूप है; तथापि इन दोनों में अन्तर नहीं है ह्न ऐसा क्यों कहा ?

**उत्तर :** संसार और मोक्ष दोनों ही एकसमय की पर्याय हैं, इन दोनों पर्यायों में त्रिकाली वस्तु की अपेक्षा से अन्तर नहीं है। यह बहुत गंभीर बात है। क्षायिकादि चार भावों को परद्रव्य, परभाव कहकर हेय कहा है। व्यवहार के पक्षवालों को तो यह बात सुनना भी कठिन पड़ेगा। संसार और मोक्ष दोनों पर्यायें हैं अवश्य, किन्तु वे आश्रय करने योग्य नहीं हैं। आश्रय करने योग्य तो एक त्रिकाली द्रव्य ही है। नियमसार गाथा-50 में बहुत गंभीर और सूक्ष्म बात की है। आचार्यदेव ने अपने लिये यह शास्त्र बनाया है, उसमें केवलज्ञानादि क्षायिकभावों को परभाव, परद्रव्य कहकर हेय कहा है। यह परमात्मा के घर की बातें हैं, परमसत्य हैं। अन्दर से समझने की लगन लगे और समझ में न आवे ह्न ऐसा नहीं हो सकता, समझ में आवेगा ही। ●

### सौतेला बेटा बनकर रह गया

आजतक इस आत्मा ने देहादि परपदार्थों में ही अपनापन मान रखा है; अत: उन्हीं की सेवा में सम्पूर्णत: समर्पित है। निज भगवान आत्मा में एक क्षण को भी अपनापन नहीं आया है; यही कारण है कि उसकी अनन्त उपेक्षा हो रही है। देह की संभाल में हम चौबीसों घण्टे समर्पित हैं और भगवान आत्मा के लिये हमारे पास सही मायने में एक क्षण भी नहीं है। भगवान आत्मा अनंत उपेक्षा का शिकार होकर सौतेला बेटा बनकर रह गया है। **ह्न आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-43**

## समाचार दर्शन ह्न

# 38 वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

**देवलाली (महा.) :** पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली द्वारा दिनांक 9 मई से 26 मई, 2004 तक आयोजित 38 वें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के उद्घाटन के समाचार जून अंक में प्रकाशित किये जा चुके हैं। विस्तृत समाचार इसप्रकार हैं ह्न

शिविर में प्रतिदिन अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रात: समयसार का सार पर एवं रात्रि में चार अनुयोग, व्यवहारनय भेद-प्रभेद, भगवान महावीर आदि विविध विषयों पर प्रवचन हुये।

प्रारंभिक चार दिनों में दोनों समय पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन हुये।

**रात्रि कालीन प्रथम प्रवचन ह्न** पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद, ब्र. हेमचन्दजी हेम, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री जयपुर, पण्डित दिनेशभाई शाह मुम्बई, पण्डित कोमलचन्दजी टड़ा, पण्डित कमलकुमारजी पिड़ावा, पण्डित विपिनजी शास्त्री मुम्बई, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई एवं पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री जयपुर के विभिन्न विषयों पर प्रवचन हुये।

**दोपहर व्याख्यानमाला में** पण्डित जिनचन्दजी आलमान, पण्डित सुनीलजी नाके, पण्डित नरेन्द्रजी जैन, डॉ. राजेन्द्रजी बंसल, पण्डित आलोकजी शास्त्री, पण्डित जीवराजजी जैन, पण्डित अमोलजी संघई, पण्डित सचिनजी पाटनी, पण्डित संजयजी राऊत, पण्डित विजयसेनजी पाटील, पण्डित प्रवीणजी शास्त्री, पण्डित प्रशांतजी मोहरे के विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला।

**विचार गोष्ठी ह्न** दोपहर में क्रमबद्धपर्याय पर विचार गोष्ठी आयोजित हुई। संचालन पण्डित अमोलजी संघई, हिंगोली ने किया।

**कक्षायें ह्न** क्रमबद्धपर्याय की कक्षा पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा एवं पण्डित नरेन्द्रजी शास्त्री जयपुर, लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका की कक्षा पण्डित दिनेशभाई शहा मुम्बई, पंचलब्धि की कक्षा डॉ. उज्ज्वलाबेन शहा मुम्बई, वीतराग-विज्ञान (सैद्धा.) पण्डित अभयकुमारजी छिन्दवाड़ा व पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, गुणस्थान विवेचन दोनों समय ब्र. यशपालजी जैन, बालबोध प्रशिक्षण (सैद्धा.) पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित कोमलचन्दजी, परीक्षामुख व अंग्रेजी कक्षा ब्र. हेमचन्दजी हेम भोपाल ने ली।

अन्य बालकों की हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, कन्नड में कक्षायें ली गई।

**प्रशिक्षण कक्षाओं के अध्यापक ह्न** पण्डित कोमलचन्दजी जैन टडा, पण्डित कमलकुमारजी जैन पिड़ावा, पण्डित नरेन्द्रजी जैन जयपुर, पण्डित नरेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित सुनीलजी नाके, पण्डित संजयजी राऊत, पण्डित अमोलजी शास्त्री, पण्डित सचिनजी शास्त्री, श्रीमती राजकुमारीजी, श्रीमती निशी जैन, श्रीमती लताजी रोम, श्रीमती रंजना बंसल, श्रीमती जयश्रीजी फुसकेले तथा कु. अनुप्रेक्षा जैन ।

**श्रुतपंचमी ह्न** इस अवसर पर दिनांक 24 मई, 2004 को जिनवाणी को रथ में लेकर जुलूस निकाला गया; जिसके पश्चात् डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का प्रासंगिक व्याख्यान हुआ।

कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

**प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन ह्न** दिनांक 25 मई को दोपहर में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर की अध्यक्षता में एवं पण्डित धन्यकुमारजी बेलोकर गजपंथा, श्री बसन्तभाई दोशी मुम्बई, श्री मुकुन्दभाइखारा मुम्बई के मुख्यातिथ्य में सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का संचालन संतोष जैन बकस्वाहा और कु. ज्ञप्ति जैन छिन्दवाड़ा ने किया।

**विशिष्ट स्थान ह्न** बालबोध प्रशिक्षण में **प्रथमस्थान** प्रियंका जैन पुत्री श्री मुकेश जैन जबलपुर ने, **द्वितीयस्थान** गजेन्द्र जैन पुत्र श्री अमृतलालजी भीण्डर (राज.) ने तथा **तृतीयस्थान** तपिश जैन पुत्रश्री लालचन्दजी खैरादीबाड़ी-उदयपुर ने प्राप्त किया।

प्रवेशिका प्रशिक्षण में **प्रथमस्थान** सुश्री आरती जैन छिन्दवाड़ा, **द्वितीयस्थान** अंकित जैन कोलारस तथा **तृतीयस्थान** अभिषेक जैन केलवाड़ा, प्रसन्न शेटे कोल्हापुर एवं कु. नेहा जैन जबलपुर ने प्राप्त किया।

**समापन समारोह ह्न** दिनांक 25 मई, 2004 को रात्रि में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की अध्यक्षता में पुरस्कार वितरण एवं समापन समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर, श्री सुमनभाई दोशी, श्री विक्रमभाई कामदार, श्री बलूभाई, श्री शांतिभाई जबेरी, श्री मुकुन्दभाई खारा आदि महानुभाव मंचासीन थे।

संचालन पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री, जयपुर ने किया।

प्रतिदिन सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति तथा रात्रि में डॉ. शुद्धात्मप्रभाजी टडैया के निर्देशन में सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये ।

शिविर के अवसर पर जैन नर्सरी, रत्नकरण्डश्रावकाचार (अंग्रेजी), जैन के.जी. भाग 1, 2, 3 एवं बालबोध मार्गदर्शिका (मराठी) का विमोचन किया गया। लगभग 40 हजार रुपये का सत्साहित्य एवं 11 हजार रुपयों के कैसेट्स घर-घर पहुँचे।

शिविर में सम्पूर्ण भारतवर्ष से लगभग 1200-1300 मुमुक्षु भाई-बहिन पधारे तथा 234 लोगों ने कण्ठ पाठ सुनाया।

**– प्रवीण शास्त्री**

## ध्यान दें !

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई द्वारा संचालित आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर **दिनांक 8 अगस्त से 17 अगस्त, 2004 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में** लगेगा। साधर्मी बन्धुओं को पधारने हेतु हमारा भावभीना आमंत्रण है।

## रत्नत्रय मण्डल विधान एवं कलशारोहण सम्पन्न

**भीण्डर (राज.):** यहाँ दिनांक 20 मई से 24 मई, 2004 तक श्री पार्श्वनाथ दि. जिनमन्दिर के स्वर्णजयंति के शुभअवसर पर श्री रत्नत्रय मण्डल विधान एवं कलशारोहण अ.भा जैन युवा फैडरेशन एवं दि. जैन तेरापंथ समाज, भीण्डर के सहयोग से सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित धनसिंहजी ज्ञायक पिड़ावा, डॉ. महावीरप्रसादजी जैन उदयपुर, पण्डित राकेशजी परतापुर, पण्डित वीरेन्द्रजी डडूका, पण्डित हेमन्तजी उदयपुर, पण्डित निलयजी टीकमगढ़, पण्डित गणतंत्रजी खरगापुर एवं पण्डित जिनेन्द्रजी उदयपुर का लाभ समाज को मिला।

प्रतिदिन प्रात: पूज्यगुरुदेवश्री के टेप प्रवचन एवं पूजन-विधान के पश्चात् पण्डित धनसिंहजी के समयसार कलश पर, डॉ. महावीरप्रसादजी जैन के द्रव्य, गुण, पर्याय पर तथा पण्डित राकेशजी दोशी के सम्यग्दर्शन का राजमार्ग विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये।

सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति के अतिरिक्त पण्डित हेमन्तजी एवं जिनेन्द्रजी ने बालकक्षा ली।

रात्रि में प्रवचनोंपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये।

दिनांक 23 मई को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का संभागीय अधिवेशन डॉ. महावीरप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। मुख्यअतिथि पं. मांगीलालजी केरोत लूणदा थे। कार्यक्रम में राजस्थान की 11 शाखाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज की।

इस अवसर पर लगभग 2000 रुपये का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा। जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान के अनेक आजीवन सदस्य बने तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर को साहित्य की कीमत कम करने में 34 हजार 765/- रुपये प्राप्त हुये। **ह्न मांगीलाल जैन**

## पर्यूषण पर्व हेतु आमंत्रण पत्र शीघ्र भेजें

**दशलक्षण पर्व में प्रवचनकार विद्वान बुलाने हेतु आमंत्रण-पत्र शीघ्र भेजें; ताकि तदनुसार निर्णय करके निर्धारित स्थानों की सूची 1 अगस्त, 04 के अंक में प्रकाशित की जा सकें।**

**पत्र में अपना पूर्ण पता पिन कोड सहित तथा फोन नं. एस.टी.डी. कोड सहित अवश्य लिखें। यदि मोबाइल नं. हो तो वह भी लिखें।** ह्न प्रबन्धक, पर्यूषण विभाग

## ❊ ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं की तिथि निश्चित ❊

**जयपुर (राज.) :** श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.) द्वारा ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं की तिथियाँ **दिनांक 30 एवं 31 जुलाई तथा 1 अगस्त, 2004** निश्चित की गई है; जिसका विस्तृत परीक्षा कार्यक्रम आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा। जिन संबंधित परीक्षा केन्द्रों ने अभीतक प्रवेश फार्म भरकर नहीं भिजवायें है, वे तत्काल परीक्षा फार्म भेजें तथा जिन परीक्षा केन्द्रों को अभीतक प्रवेशफार्म नहीं मिले हों, वे कृपया तुरन्त परीक्षा बोर्ड कार्यालय को पत्र लिखकर मंगा लेवें। **ह्न ओमप्रकाश आचार्य, प्रबन्धक**